मध्यप्रदेश में कुपोषण और स्वास्थ्य विभाग की भूमिका

सवाल यह कि बच्चे किस विभाग की जिम्मेदारी हैं?

▪ सचिन कुमार जैन

मध्यप्रदेश में विगत दो वर्षो में कुपोषण मानवीय विकास के एक केन्द्रीय सूचक के रूप में उभरकर राज और समाज के सामने आया है। बाल संजीवनी अभियान के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार ८० हजार बच्चे गंभीर रूप से कुपोषित हैं, और मृत्यु की कगार पर हैं। ऐसे में सामाजिक संगठन बच्चों की मौत के मामलों को उठाते रहे और सरकार उन्हें नकाराती रही। यह टकराव अब निर्गुण और निराकार नहीं रह गया है बल्कि सम्बन्धों की सतह पर साफ नजर आने लगा है। राज्य की भूमिका तय करते समय सरकार के महिला और बाल विकास विभाग को ही पूरा राज्य मान लिया गया है। स्वास्थ्य विभाग, पंचायत और ग्रामीण विकास विभाग तो दूर खड़े होकर ताक रहे हैं। ऐसा शायद इसलिये हो रहा है क्योंकि कुपोषण के संकट के हल के लिये कोई निश्चित बुनियादी समझ भी राज्य और राजनैतिक दलों के पास नहीं है।

अपने आप में कुपोषण एक बहुआयामी संकट है जो प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक व्यवहार, आजीविका के साधन, सरकारी सेवाओं और अधिकारों के लिये संघर्ष की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। मूल रूप से यह पाया गया है कि जन्म के तत्काल बाद से 6 माह तक बच्चों को मां का दूध पिलाया जाता है और जब बच्चों को यह दूध मिलना बंद होता है तो उन्हें शरीर और मन के विकास के लिए जरूरी पोषाहार नहीं मिलता है। सिद्धान्ततः जन्म के बाद के शुरूआती दो वर्षो में बच्चों का लगभग ८० फीसदी शारीरिक मानसिक विकास हो रहा होता है। इसलिये उसकी पोषण सम्बन्धी जरूरते भी ज्यादा होती हैं। परन्तु गरीबी के कारण उसे खाना नहीं मिलता है और एक सतत् भुखमरी की प्रक्रिया वहीं से शुरू हो जाती है। बच्चे को भूख लगती है परन्तु वह उसे अभिव्यक्त भी नहीं कर पाता है इसलिये भूख के कारण मध्यप्रदेश में कुल मौतों में से 37.3 फीसदी मौतें 0 से 4 वर्ष तक की उम्र के बच्चों में दर्ज की गई हैं। ऐसी स्थिति में महिला एवं बाल विकास विभाग छह वर्ष तक के सभी बच्चों को आंगनबाड़ी की व्यवस्था के जरिये दलिया बांटकर भुखमरी को तात्कालिक रूप से निष्प्रभावी करने की कोशिश करता है। अब यह कोशिश निष्प्रभावी सिद्ध हो रही है क्योंकि कुपोषण परिवार की खाद्य सुरक्षा से जुड़ा हुआ मसला है जिसे यह विभाग सुनिश्चित नहीं कर सकता है। इसके लिए लाजिमी है कि गरीबी का अभिशाप भोग रहे परिवारों की स्पष्ट रूप से पहचान हो और उन्हें प्राथमिकता के आधार पर रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाये जायें।

खण्डवा में भोजन एवं काम के अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे स्पंदन संगठन की पहल पर जिला प्रशासन ने काम के बदले अनाज योजना में कुपोषित बच्चों वाले परिवारों को प्राथमिकता के आधार पर रोजगार देने के आदेश जारी कर दिये। फिर राज्य स्तर पर भी महिला एवं बाल विकास विभाग ने यही पहल की। परन्तु यह अनुभव यह बताता है कि बच्चों के लिये विभाग को जिम्मेदार तो बनाया गया है पर उसे ताकतवर नहीं बनाया गया है। और सरकार के दूसरे विभागों को बच्चों की जिम्मेदारी से पूरी तरह से मुक्त रखकर छुट्टा छोड़ दिया गया है। काम के बदले अनाज योजना का ही उदाहरण लें तो, बाल विकास विभाग ने आदेश तो पारित कर दिया परन्तु इसके क्रियान्वयन क्र सूत्र तो ग्रामीण विकास विभाग के हाथ में है, जिसे अब तक जिम्मेदार नहीं बनाया गया है।

ग्रामीण विकास विभाग से ज्यादा चिंतनीय पहलू तो स्वास्थ्य विभाग की असंवेदनशीलता से जुड़ा हुआ है। बच्चे बीमार होते हैं, उन्हें खसरा और टीबी होती है, फिर वे मर जाते हैं, पर स्वास्थ्य विभाग की कहीं कोई जिम्मेदारी तय नहीं है। और जब बच्चों की मौत होती है तो इसका पूरा दोष महिला एवं बाल विकास विभाग के मत्थे मढ़ दिया जाता है। इसी विभाग द्वारा चलाये जा रहे बाल संजीवनी कुपोषण निवारण अभियान के मार्च 2005 में सम्पन्न हुये छठे साप्ताहिक चरण में 80 हजार गंभीर रूप से कुपोषित बच्चों की पहचान हुई है। ये वे बच्चे हैं जो आज या कल, कभी भी मृत्यु शै्या पर जा सकते है।। इन्हें तत्काल स्वास्थ्य सेवाओं की जरूरत है और इन्हें 160 ग्राम दलिया खिला कर स्वस्थ करने की बात करना एक अमानवीय और भद्दा मजाक है। बाल संजीवनी अभियान के मध्यप्रदेश प्रशासन अकादमी द्वारा किए गये मूल्यांकन की रिपोर्ट में भी यही कहा गया है कि इस अभियान में स्वास्थ्य विभाग का कोई कार्यकर्ता शिरकत नहीं करता है और न ही 'विटामिन-ए' की आपूर्ति की जा रही है। उल्लेखनीय है कि गंभीर कुपोषण से अगर बच्चा बच भी जाता है तो वह विटामिन-ए के अभाव में अंधा हो जाता है।

यह कोई स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है कि आंगनबाड़ी कार्यकर्ता गांव में कुपोषित बच्चों की पहचान जरूर करती है परन्तु वह डॉक्टर या स्वास्थ्य कार्यकर्ता नहीं है, वह बच्चों का इलाज नहीं कर सकती। इन परिस्थितियों में वह ए.एन.एम. और मुख्य चिकित्सा अधिकारियों के सामने हमेशा याचक की मुद्रा में रहती है। वे चाहें तो इलाज करें चाहें तो न करें, क्योंकि वे बाध्य नहीं हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि व्यावहारिक संदर्भो में स्थानीय आंगनबाड़ी कार्यकर्ता को बाहरी ए.एन.एम. की अपेक्षा कम सम्मान मिलता है क्योंकि उसका काम तकनीकी कौशल पर आधारित नहीं माना जाता है। एएन.एम. चूंकि नियमानुसार जिम्मेदार नहीं है और वैसे भी टीकाकारण के काम में भी उसने लापरवाही की मिसाल कायम की है इसलिये वह कुपोषित बच्चों को अस्पताल ले जाने की जहमत नहीं उठाती है। अक्सर बच्चों की मृत्यु के सम्बन्ध में यही सरकारी वक्तव्य दिया जाता है कि मौतें कुपोष्ण से नहीं खसरा, डायरिया या टी.बी. से हुई है। परन्तु वक्तव्य देने वाले यह भूल जाते हैं कि मध्यप्रदेश में केवल 31 फीसदी

टीकाकारण ही हो पाया है और इसके लिए केवल स्वास्थ्य विभाग ही जिम्मेदार है और ये बीमारियां टीकाकारण के अभाव में बच्चों का जीवन कम करती हैं।

अब बाल विकास विभाग *बाल शक्ति योजना* लेकर आ रहा है जिसमें रंगीन शब्दों में यह दावा किया गया है कि गंभीर रूप से कुपोषित बच्चों को अस्पताल में दाखिल कर पूरी तरह से स्वास्थ्य होने तक उनका इलाज कराया जायेगा, उनके साथ बच्चों के पालकों को भी स्वास्थ्य केन्द्र में रहने की सुविधा मिलेगी परन्तु आंकड़े इस सपने के रंगों को बदरंग कर रहे हैं। जब हम स्वास्थ्य विभाग के इस वर्ष के बजट का विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि विभाग के पूरे बजट में एक व्यक्ति पर वर्ष भर में केवल 125 रूपये खर्च करने का प्रावधान है। जिसमें दवा और सेवा के अलावा अन्य खर्च भी शामिल है। मध्यप्रदेश के टूटे–फूटे, संक्रमित और खण्डहर जैसे ग्रामीण स्वास्थ्य केद्रों में 12407 हजार बिस्तर ही उपलब्ध हैं, जो वैसे भी भरे रहते हैं और सरकार को 80 हजार बच्चों का इलाज करना है, यानी यदि तमाम इलाज करा रहे मरीजों को यदि अस्पताल से बाहर निकाल दिया जाये तो भी एक बार में 12 हजार बच्चों का ही इलाज हो सकता है। प्रदेश में बच्चों की सुरक्षा अभी एक सपना है क्योंकि बच्चों के इलाज के लिए मध्यप्रदेश में अभी केवल 90 शिशु रोग विशेषज्ञ ही काम कर रहे हैं। जबकि 428 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों 48 जिला चिकित्सालयों 6 चिकित्सा महाविद्यालयों सहित आपातकालीन जरूरत के लिए 718 चिकित्सकों की जरूरत है जो बच्चों का इलाज कर सकें। परन्तु सरकार की कार्यशैली के कारण तमाम दबावों के बावजूद चिकित्सक ग्रामीण इलाकों में काम करने के लिए तैयार नहीं हैं।

सेंधवा के बलवाड़ी स्वास्थ्य केन्द्र के अन्तर्गत 30 गांव और 21 हजार की आबादी आती है पर वहां पिछले तीन साल से डॉक्टर ही नहीं पहुंचा है। इसी के अन्तर्गत कुपोषण से एक साल में 13 बच्चों की मौत हुई है। और 16 फीसदी बच्चे गंभीर रूप से कुपोषित हैं; कुल कुपोषित तो 70 फीसदी से ज्यादा हैं। यहां कोई शक्ति बाल शक्ति योजना को लागू नहीं करा सकती है क्योंकि कानून बनाने वालों पर कोई कानून लागू नहीं होता है।

यह मसला सरकारी सूचना तंत्र से भी बखूबी जुड़ा हुआ है। अपने काम की सूचनायें तो प्रशासन की अंदरूनी और दुर्गम गांवों से तत्काल मिल जाती है। गांवों में जब जनसंगठन जंगल या जमीन के मुद्दे पर आदिवासियों के साथ बैठक करते हैं तो गांव में मौजूद मुखबिरों या कोटवार के जरिये सारी खबर कलेक्टर तक पहुंच जाती है। वहां से यह जानकारी राज्य सरकार के गुप्तचर विभाग और मुख्यमंत्री तक बिना किसी विलम्ब पहुंच जाती है और संगठन की कार्यकर्ताओं पर कार्रवाई करने के आदेश हो जाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में दो से पांच घंटे लगते है। परन्तु गांव में गंभीर रूप से कुपोषित बच्चों के बारे में जिला प्रशासन को अखबारों से खबर मिलती है और बच्चों के मरने के बाद ही कार्रवाई शुरु

होती है। वह भी अगर हल्ला मचे तो। इसमें लगते हैं 20 से 60 दिन। स्वाभाविक है कि पूरी व्यवस्था सरकार के हित और लोक अहित के लिए काम करती है।

कुपोषण जैसे संकट के मामले में सबसे बड़ी समस्या यदि जवाबदेही और समन्वय के अभाव की ही है तो स्वाभाविक रूप से संकट से मुक्ति असंभव हो जाती है। और किसी चमत्कार की कल्पना ही सबसे बेहतर विकल्प है।

Vikas Samvad, E7/226, First Floor,Arera Colony, Shahpura, Bhopal, Madhya Pradesh.
Ph-07555252789, rtfmp@rediffmail.com